इकाई 10 समाजशास्त्र विज्ञान के रूप में

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 समाज के विज्ञान की स्थापना के सामान्य प्रतिबंध

10.3 समाजशास्त्र "सामाजिक तथ्यों" के अध्ययन के रूप में

- 10.3.1 सामाजिक तथ्य
- 10.3.2 सामाजिक तथ्यों के प्रकार
- 10.3.3 सामाजिक तथ्यों की प्रमुख विशेषताएं
- 10.3.4 बाह्यता एवं बाध्यता

10.4 समाजशास्त्रीय पद्धति

- 10.4.1 सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियम
- 10.4.2 सामान्य एवं व्याधिकीय (pathological) में विभेद के नियम
- 10.4.3 सामाजिक प्ररूप के वर्गीकरण के नियम
- 10.4.4 सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के नियम

10.5 सारांश

10.6 शब्दावली

10.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

मनुष्य सदैव समाज में रहता आया है तथा समाज के सदस्य इसकी प्रकृति के बारे में सोचते रहे हैं। यह कुछ इस प्रकार से कहना हुआ कि मनुष्य के पास शरीर है तथा उसे अपने शरीर के बारे में सदैव कुछ जानकारी रही है। शरीर के भिन्न-भिन्न भागों की रचना और उसकी कार्यविधि के बारे में जानकारी क्रमश: शरीर रचना विज्ञान तथा शरीर-क्रिया विज्ञान जैसे विशिष्ट विषयों के रूप में बाद में विकसित हुई। अत: हमारे शरीर व हमारे निकट की अन्य वस्तुओं के बारे में वैज्ञानिक ज्ञान का विकास इस ज्ञान को प्राप्त करने की नवीन पद्धतियों के साथ-साथ हुआ। इस पद्धति को वैज्ञानिक पद्धति कहा गया। इसी प्रकार समाज के बारे में, उसके कार्य करने के बारे में व इसके स्वरूपों में होने वाले परिवर्तनों के बारे में जानने का प्रयास किया जाता है। समाज के अध्ययन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण लाने में दर्खाइम ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। अत: इस इकाई में यह जानने का प्रयास किया जायेगा कि उसने इस दिशा में क्या कार्य किया तथा इस कार्य को कैसे किया? इस इकाई को पढ़ने के बाद आपके लिए यह समझना संभव होगा कि किस प्रकार दर्खाइम ने

- विज्ञान की विशेषताओं का पता लगाया।
- सामाजिक तथ्यों की परिभाषा के आधार सुनिश्चित किये।
- यह बताया कि समाजशास्त्र अन्य विषयों से कैसे भिन्न है।
- समाज के प्रकारों का वर्णन किया।

- सामाजिक तथ्यों का वर्गीकरण किया।
- सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियमों को सूचीबद्ध किया।
- तथ्यों की व्याख्या के नियमों को सुनिश्चित किया।

10.1 प्रस्तावना

एमिल दर्खाइम (1858-1917) को सबसे अधिक एक स्वतंत्र शैक्षणिक विषय के रूप में समाजशास्त्र को मान्यता दिलाने के प्रयासों के लिए जाना जाता है। दर्खाइम ने समाज के विज्ञान के विचार के लिए ऐसी मान्यता स्थापित की जिससे आधुनिक समाज की नैतिक व बौद्धिक समस्याओं के अध्ययन में योगदान किया जा सका। दर्खाइम की समाजशास्त्र की अवधारणा का विवेचन करते समय तीन महत्वपूर्ण पक्षों पर ध्यान केन्द्रित किया जायेगा।

(अ) **सामाजिक विज्ञान** की स्थापना के सामान्य **प्रतिबंध**, (देखें उपभाग 10.2) (ब) समाजशास्त्र 'सामाजिक तथ्यों' के अध्ययन के रूप में (देखें उपभाग 10.3) तथा (स) समाजशास्त्रीय पद्धति (देखें उपभाग 10.4)।

10.2 समाज के विज्ञान की स्थापना के सामान्य प्रतिबंध

दर्खाइम के जीवन काल में समाजशास्त्र एक अलग विषय के रूप में उभरा था। इससे पहले विश्वविद्यालयों के विद्वानों सहित अधिकतर शिक्षित व्यक्तियों की दृष्टि में समाजशास्त्र एक नाम मात्र का विषय था। जब दर्खाइम ईकोल नॉरमेल (Ecole Normale) में विद्यार्थी था उस समय फ्रांस में सामाजिक विज्ञान की एक भी प्रोफेसरशिप नहीं थी। यह 1887 में ही सम्भव हो सका जब फ्रांस सरकार ने बॉर्दो विश्वविद्यालय (University of Bordeaux) में दर्खाइम के लिए प्रोफेसर का पद बनाया। इसके कई वर्षों बाद उसे सॉरबॉन (पेरिस) में समाजशास्त्र के प्रोफेसर की उपाधि से सम्मानित किया गया।

इन परिस्थितियों में दर्खाइम के सामने प्रत्यक्ष रूप से समाजशास्त्र की प्रकृति व इसके क्षेत्र की रूपरेखा तैयार करने का कार्य था। दर्खाइम ने सामाजिक विज्ञानों को प्राकृतिक विज्ञानों से अलग माना क्योंकि सामाजिक विज्ञान मानव संबंधों से जुड़े हुए हैं। फिर भी प्राकृतिक विज्ञानों में प्रयोग की जाने वाली पद्धति को सामाजिक विज्ञानों में भी प्रयोग किया जा सकता है। उसने समाजशास्त्र को दर्शनशास्त्र तथा मनोविज्ञान से अलग करते हुए उसकी प्रकृति का एक सामाजिक विज्ञान के रूप में प्रतिपादन किया। दर्शनशास्त्र का संबंध विचारों व धारणाओं से है जबकि विज्ञान का संबंध वस्तुपरक वास्तविकताओं से है। दर्शनशास्त्र एक ऐसा स्रोत है जहां से सभी विज्ञानों का उद्भव हुआ अत: दर्खाइम ने समाजशास्त्र के स्रोत के रूप में दर्शनशास्त्र के महत्व को हमारे सामने रखा। इसी बात को चित्र 10.1 में दिखाया गया है।

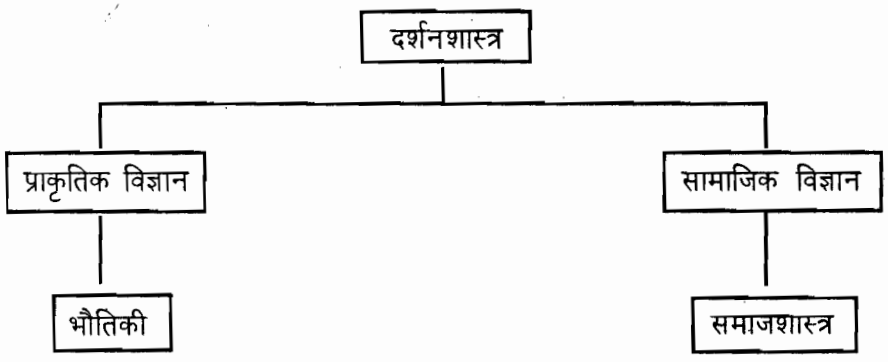

चित्र 10.1: समाजशास्त्र के स्रोत के रूप में दर्शनशास्त्र

दर्खाइम ने 1892 में प्रकाशित अपनी पुस्तक, *मॉन्टेस्क्यू एण्ड रूसो,* में सामाजिक विज्ञान की स्थापना के सामान्य प्रतिबंधों को स्थापित किया, जो समाजशास्त्र पर भी लागू होते हैं। आइए उन पर एक दृष्टि डालें।

i) सर्वप्रथम उसने यह बताया कि विज्ञान का मानवीय ज्ञान व विचारों के साथ-साथ विस्तार नहीं हो सकता। मस्तिष्क में आने वाले प्रत्येक प्रश्न का सत्यापन विज्ञान द्वारा नहीं किया जा सकता। यह संभव है कि किसी दार्शनिक अथवा कलाकार का कुछ इस प्रकार का उद्देश्य होता हो परन्तु यह निश्चित रूप से विज्ञान के दायरे में नहीं आता। विज्ञान का एक विशिष्ट क्षेत्र है अथवा उसकी अपनी एक विषय-वस्तु होती है। इसकी परिधि में सम्पूर्ण ज्ञान नहीं आता।

ii) दूसरे, वैज्ञानिक खोज या छान-बीन के लिए एक निश्चित क्षेत्र होना आवश्यक है। विज्ञान का संबंध तथ्यों व वस्तुपरक वास्तविकताओं से है। सामाजिक विज्ञान के अस्तित्व के लिए भी उसकी एक निश्चित विषय-वस्तु का होना आवश्यक है। दर्खाइम ने यह बताया कि यद्यपि नियम, परम्परा, धर्म आदि वास्तविकताओं के बारे में दार्शनिक जानते हैं, लेकिन जब वे वास्तविकताओं को मानव इच्छा की अभिव्यक्तियों के रूप में देखते हैं तो इनकी यथार्थता समाप्त हो जाती है। इस प्रकार तथ्यों के बाह्य स्वरूपों का परीक्षण करने की अपेक्षा दर्शनशास्त्र व धर्म के तहत् किये गये अध्ययन आन्तरिक इच्छाओं तक ही केन्द्रित रह जाते हैं। परन्तु वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करने में तथ्यों को उसी रूप में देखना महत्वपूर्ण है जिस रूप में वे संसार में दिखायी देते हैं।

iii) विज्ञान व्यक्तियों का वर्णन नहीं करता। वह विषय-वस्तु के प्रकारों अथवा वर्गों का वर्णन करता है। यदि मानव समाजों का वर्गीकरण किया जाए तो यह व्यवहार के सामान्य नियमों तक पहुँचने तथा व्यवहार की नियमितता की खोज करने में हमारी सहायता कर सकता है।

v) सामाजिक विज्ञान विभिन्न मानव समाजों का वर्गीकरण करता है। यह प्रत्येक प्रकार के समाज में सामाजिक जीवन की स्थिति का वर्णन करता है। इसका सीधा सा कारण यह है कि इस प्रकार सामाजिक विज्ञान में उसी सामाजिक प्रकार का ही वर्णन होता है, जो कुछ भी उस प्रकार विशेष से जुड़ा है तथा सभी के लिये समान रूप से लागू होता है, तथा जो कुछ भी सभी पर समान रूप से लागू होता है वह समाज के लिए स्वास्थ्यकर है।

v) विज्ञान का प्रयास समान रूप से लागू होने वाले सिद्धांतों या नियमों को प्राप्त करना है। यदि समाजों में नियमितता नहीं पायी जाती तो किसी भी प्रकार के सामाजिक विज्ञान की सम्भावना नहीं रहती। दर्खाइम ने पुन: इस ओर संकेत किया है कि यदि यह सिद्धांत कि सृष्टि की सभी घटनाएं परस्पर गहनता से सम्बद्ध हैं, प्रकृति के दूसरे क्षेत्रों के लिए सत्य सिद्ध हो चुका है, तो यह मानव समाजों के लिए भी सत्य है, जो प्रकृति का ही एक भाग है। इस विचार को आगे बढ़ाने में कि प्राकृतिक तथा सामाजिक जगत में एक निरन्तरता है, दर्खाइम का चिन्तन कॉम्ट के विचारों से बहुत अधिक प्रभावित रहा है।

vi) यद्यपि प्राकृतिक व सामाजिक जगत के बीच एक निरन्तरता है परन्तु सामाजिक जगत, उतना ही विशिष्ट व स्वतंत्र विषय-वस्तु का क्षेत्र है, जितना कि भौतिक व जीवविज्ञान का क्षेत्र।

दर्खाइम ने कुछ विद्वानों के इस मत का बहुत अधिक विरोध किया कि समाज की प्रत्येक घटना को मानवीय इच्छा की अभिव्यक्तियों तक सीमित कर देना चाहिये। उसने स्पष्ट किया कि मानव इच्छा व उसकी अभिव्यक्तियों की श्रेणियां मनोविज्ञान के क्षेत्र में आती हैं न कि सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में। यदि सामाजिक विज्ञान को अपना अस्तित्व बनाये

रखना है तो समाजों को इस रूप में मानना होगा कि उनका एक निश्चित स्वरूप होता है जो उनका निर्माण करने वाले तत्वों की प्रकृति व व्यवस्था का परिणाम है।

vii) अन्त में, समाज की एकरूपताओं, प्रकारों तथा नियमों की विवेचना के लिए हमें एक पद्धति की आवश्यकता है। विज्ञान की जो पद्धतियां प्राकृतिक विज्ञानों के क्षेत्र में लागू होती हैं, वे सामाजिक क्षेत्र के लिए भी वैध हैं।

समाजविज्ञान का जो आधार दर्खाइम ने अपने प्रथम प्रकाशित कार्य में बताया था वह जीवन पर्यन्त समाजविज्ञान व उनके द्वारा कथित समाजशास्त्र के लक्षणों को सुनिश्चित करने का मूल आधार बना रहा। यह जाँचने के लिए कि उपरोक्त विचार बिंदु आपको पूरी तरह से समझ में आ गए हैं, सोचिए और करिए 1 को पूरा करें।

सोचिए और करिए 1

नीचे दिये गए रेखा चित्र में विभिन्न प्राकृतिक तथा सामाजिक विज्ञानों को सूचीबद्ध कीजिए जिनसे आप अवगत हों।

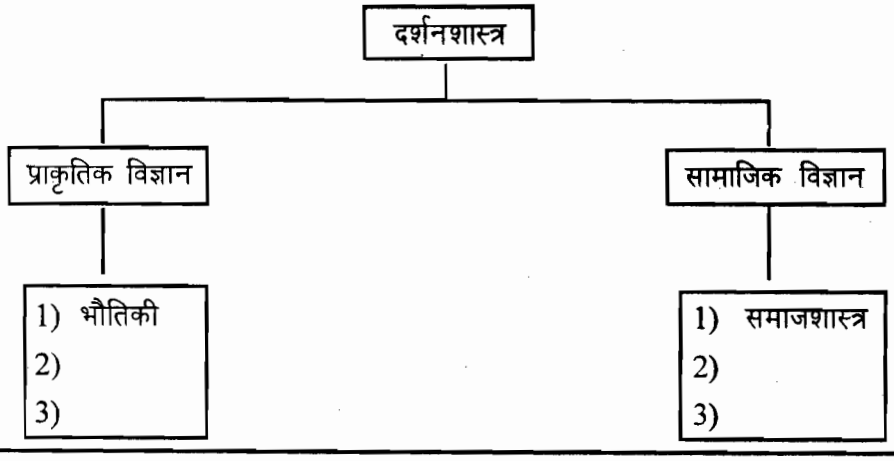

10.3 समाजशास्त्र "सामाजिक तथ्यों" के अध्ययन के रूप में

समाजशास्त्र की विषय वस्तु को निर्धारित करने में दो पहलू सम्मिलित हैं (अ) अध्ययन के सम्पूर्ण क्षेत्र को परिभाषित करना तथा (ब) उस प्रकार की वस्तु को परिभाषित करना जिसका इस क्षेत्र में अध्ययन किया जाएगा। दर्खाइम (1950: 30) ने 1895 में प्रकाशित अपनी पुस्तक, *द रूल्स ऑफ़ सोशियोलॉजिकल मैथड,* में सामाजिक तथ्यों को समाजशास्त्र की विषय वस्तु बताते हुए दूसरे पहलू को निष्पादित किया है। उसने सामाजिक तथ्यों को "कार्य करने, सोचने तथा अनुभव करने के उन तरीक़ों" के रूप में परिभाषित किया है जो "व्यक्ति से बाह्य हैं तथा एक दबावकारी शक्ति से युक्त हैं जिसके द्वारा वे व्यक्ति पर नियन्त्रण रखते हैं"।

दर्खाइम के लिए समाज एक ऐसी वास्तविकता है जो **सूइ जेनेरिस (sui generis)** है (इस शब्द का अर्थ शब्दावली में देखिए)। समाज व्यक्तियों के साहचर्य से बना है अत: समाज एक विशिष्ट वास्तविकता का प्रतिनिधित्व करता है जिसकी अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं। समाज की यह विशिष्ट वास्तविकता उन अन्य वास्तविकताओं से अलग है जिनका अध्ययन भौतिक तथा जीवविज्ञान में किया जाता है। इसके अतिरिक्त, सामाजिक वास्तविकता व्यक्तियों से अलग है तथा उनसे ऊपर है। अत: सामाजिक वास्तविकता को समाजशास्त्र की विषय वस्तु होना चाहिए। किसी भी सामाजिक घटना की वैज्ञानिक समझ सामाजिक संरचना में दिखायी देने वाली **सामूहिक** अथवा सहयोगात्मक विशेषताओं से उत्पन्न होनी चाहिए। इस दिशा में कार्य करते हुए दर्खाइम ने विविध प्रकार की अवधारणाओं को विकसित किया तथा उनका उपयोग किया। "सामूहिक प्रतिनिधित्व" उन अग्रणी धारणाओं में से एक है जो दर्खाइम के चिन्तन में पायी जाती

हैं। "सामूहिक प्रतिनिधित्व" (इकाई 12 की विषय-वस्तु) के बारे में जानने से पूर्व यह आवश्यक है कि आप यह समझ लें कि दर्खाइम के लिए "सामाजिक तथ्यों" का अर्थ क्या है।

10.3.1 सामाजिक तथ्य

दर्खाइम ने समाजशास्त्र की अपनी वैज्ञानिक दृष्टि को जिस मूलभूत सिद्धांत पर आधारित रखा वह सामाजिक तथ्यों की वस्तुपरक वास्तविकता है। सामाजिक तथ्य कार्य करने, सोचने व अनुभव करने का वह तरीका है जो किसी भी समाज में लगभग सामान्य रूप से पाया जाता है। दर्खाइम ने सामाजिक तथ्यों का वस्तुओं की भांति प्रयोग किया है। वे वास्तविक हैं तथा व्यक्ति की इच्छा या चाह से परे हैं। वे व्यक्तियों से बाहर हैं तथा उन पर दबाव डालने में समर्थ हैं। दूसरे शब्दों में उनकी प्रकृति दबावकारी या नियंत्रणकारी है।

अत: सामाजिक तथ्यों का अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है। वे व्यक्तिगत अभिव्यक्तियों से स्वतंत्र हैं। सामाजिक तथ्यों की सही प्रकृति समाज में मौजूद सामूहिकता अथवा सहयोग की विशेषताओं में अंतर्निहित है। कानूनी संहिताएं तथा प्रथाएं, नैतिक नियम, धार्मिक विश्वास तथा रीतियां, भाषा आदि सभी सामाजिक तथ्यों की श्रेणी में आते हैं।

10.3.2 सामाजिक तथ्यों के प्रकार

दर्खाइम के दृष्टि में सामाजिक तथ्य एक सतत क्रम में होते हैं जिसके एक सिरे पर संरचनात्मक अथवा स्वरूप संबंधी सामाजिक घटनाएं होती हैं। ये सामाजिक जीवन के आधार को बनाती हैं। यहां उसका तात्पर्य समाज का निर्माण करने वाले मूलभूत भागों की प्रकृति व संख्या, वे जिस क्रम में व्यवस्थित हैं तथा उनके संयोजन के परिमाण से है। इस श्रेणी के सामाजिक तथ्यों में भौगोलिक क्षेत्रों में जनसंख्या का वितरण, आवासों की रचना, संचार-व्यवस्था की प्रकृति आदि सम्मिलित हैं।

दूसरी श्रेणी में, सामाजिक तथ्यों के संस्थागत स्वरूप आते हैं । यह समाज में लगभग सामान्य तथा विस्तृत रूप से व्याप्त रहते हैं। ये संपूर्ण समाज की सामूहिक प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस श्रेणी में समाज में विद्यमान कानूनी तथा नैतिक नियम, धार्मिक मत तथा विश्वास व प्रथाएं सम्मिलित हैं।

तीसरी श्रेणी में, वे सामाजिक तथ्य हैं जो संस्थागत नहीं हो पाये हैं। इस प्रकार के सामाजिक तथ्यों का एक स्पष्ट रूप नहीं बन पाया है। वे समाज के संस्थागत आदर्शों से परे स्थित हैं, साथ ही इस प्रकार के सामाजिक तथ्यों ने संस्थागत सामाजिक तथ्यों की तुलना में अभी तक पूर्णतया वस्तुपरक व स्वतंत्र अस्तित्व नहीं प्राप्त किया है। इसके अतिरिक्त व्यक्तियों पर उनकी बाह्यता तथा उन पर बाध्यता अभी पूर्ण रूप से नहीं है। इस प्रकार के सामाजिक तथ्यों को "सामाजिक प्रवाह" (social currents) कहा गया है। उदाहरण के लिए विशिष्ट स्थितियों में उत्पन्न मतों का यत्र-तत्र प्रवाह, साहित्य में उपजी विचारधाराएं (नई कविता), भीड़ में उत्पन्न उन्माद, लोगों की भीड़ में क्षणिक क्रोध, विशिष्ट घटनाओं द्वारा तिरस्कार या करुणा की भावना का उपजना, आदि।

उपरोक्त सभी सामाजिक तथ्य एक सतत क्रम (continuum) बनाते हैं तथा समाज के सामाजिक परिवेश को संगठित करते हैं।

इसके अतिरिक्त दर्खाइम ने सामान्य तथा व्याधिकीय (pathological) प्रकार के सामाजिक तथ्यों में अंतर किया है। एक सामाजिक तथ्य उस दशा में सामान्य है जब वह उद्विकास की किसी निश्चित अवस्था में किसी निश्चित प्रकार के समाज में सामान्य रूप से मिल जाता है। इससे विचलित तथ्य व्याधिकीय हैं। उदाहरण के लिए किसी भी समाज में अपराध की कुछ मात्रा होना

आवश्यक है। अत: दर्खाइम के अनुसार उस सीमा तक अपराध एक सामान्य सामाजिक तथ्य है (जैसे 'आटे में नमक के बराबर' कहावत में)। जबकि अपराध की दर में असामान्य वृद्धि होना व्याधिकीय सामाजिक तथ्य है। अपराध की नैतिक भर्त्सना में कमी होना तथा विशिष्ट प्रकार के आर्थिक संकट जो समाज को अराजकता की ओर ले जाते हैं, व्याधिकीय सामाजिक तथ्यों के अन्य उदाहरण हैं।

10.3.3 सामाजिक तथ्यों की प्रमुख विशेषताएं

दर्खाइम के मत में एक वस्तुपरक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र को दूसरे विज्ञानों के प्रारूप के अनुरूप चलना चाहिये। ऐसा करने के लिए दो बातों का होना आवश्यक है। प्रथम, समाजशास्त्र का "विषय" निश्चित होना चाहिये तथा इसको सभी दूसरे विज्ञानों से अलग किया जाना चाहिये। द्वितीय, समाजशास्त्र का "विषय" ऐसा होना चाहिये जिसका अवलोकन व व्याख्या उसी प्रकार से की जा सके जिस प्रकार से अन्य विज्ञानों में तथ्यों का अवलोकन व व्याख्या की जाती है। दर्खाइम की दृष्टि में समाजशास्त्र का "विषय", सामाजिक तथ्य हैं तथा इन सामाजिक तथ्यों को "वस्तु" की भांति समझना चाहिये। सामाजिक तथ्यों की प्रमुख विशेषताएं हैं: (i) बाह्यता, (ii) बाध्यता, (iii) स्वतंत्रता तथा (iv) सामान्यता।

दर्खाइम के अनुसार सामाजिक तथ्यों का अस्तित्व व्यक्तिगत चेतना के बाहर होता है। उनका अस्तित्व व्यक्तियों के परे होता है। उदाहरण के लिए कानून व प्रथाओं में पारिवारिक अथवा नागरिक या संविदात्मक दायित्वों (contractual obligations) की परिभाषा व्यक्तियों से बाह्य होती है। धार्मिक विश्वास व व्यवहार व्यक्ति से परे व पहले से ही विद्यमान होते हैं। व्यक्ति समाज में जन्म लेता है और उसे छोड़ जाता है जबकि सामाजिक तथ्य समाज में पहले से ही विद्यमान रहते हैं। उदाहरणार्थ, भाषा किसी भी व्यक्ति पर निर्भर न रहते हुए स्वतंत्र रूप से कार्यरत है।

सामाजिक तथ्यों की एक अन्य विशेषता यह है कि ये व्यक्ति के ऊपर एक दबाव डालते हैं। सामाजिक तथ्यों की मान्यता का कारण है कि ये स्वयं को व्यक्ति पर अधिरोपित करते हैं। उदाहरण के लिए, कानून, शिक्षा, विश्वास आदि प्रत्येक व्यक्ति से पहले ही स्थापित रहते हैं। वे सभी के लिए प्रभावशाली व दायित्वपूर्ण होते हैं। जब एक भीड़ में कोई अनुभव या सोच को अधिरोपित किया जाता है तो यह विवशता या एक प्रकार की बाध्यता का उदाहरण है। इस प्रकार की घटना सिद्धांत रूप से सामाजिक है क्योंकि इसका आधार तथा विषय पूरा समूह है न कि कोई व्यक्ति विशेष।

सामाजिक तथ्य वह है जो समाज में लगभग सामान्य रूप से घटित होता है। साथ ही मानव प्रकृति के सार्वभौमिक गुणों व व्यक्तियों के व्यक्तिगत गुणों से सीमित न होने के अर्थ में स्वतंत्र है। इसके उदाहरण किसी समूह द्वारा सामूहिक रूप से किये गये कार्य, अनुभव तथा विश्वास हैं। संक्षेप में सामाजिक तथ्य विशिष्ट होते हैं। उनका जन्म व्यक्तियों के पारस्परिक साहचर्य से होता है। सामाजिक तथ्य सामाजिक समूह अथवा समाज के सामूहिक प्रकरणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये व्यक्तिगत चेतना से उत्पन्न तथ्यों से गुणों में भिन्न होते हैं। सामाजिक तथ्यों को वर्गीकृत व श्रेणीबद्ध किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक तथ्य समाज के विज्ञान (समाजशास्त्र) की विषय-वस्तु हैं। सामाजिक तथ्यों की इस प्रकृति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सामाजिक तथ्यों में सामान्यता पाई जाती है अर्थात् सभी समाजों में ऐसे सामाजिक तथ्य होते हैं जिन्हें वर्गीकृत तथा श्रेणीबद्ध किया जा सकता है।

अगले उपभाग (10.3.4) में सामाजिक तथ्यों की प्रमुख विशेषताओं अर्थात् बाह्यता तथा बाध्यता पर विस्तार में चर्चा होगी। अगले उपभाग को पढ़ने से पहले बोध प्रश्न1को पूरा कर लें।

बोध प्रश्न 1

निम्न कथन आपके द्वारा अभी तक प्राप्त जानकारी पर आधारित हैं। उपयुक्त शब्दों द्वारा खाली स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) समाज व्यक्तियों का योग मात्र ..... है। यह व्यक्तियों के ..... द्वारा निर्मित व्यवस्था है।

ii) समाज एक ऐसी वास्तविकता है जो ..... है।

iii) समाज में कानूनी संहिताएं, प्रथाएँ, नैतिक नियम, धार्मिक विश्वास तथा सोचने, अनुभव करने व कार्य करने के तरीके, आदि होते हैं, दर्खाइम ने इन्हें ..... कहा है।

iv) दर्खाइम ने सामाजिक तथ्यों को ..... की भांति माना है।

v) सामाजिक तथ्य व्यक्तियों की इच्छा या चाह से ..... होते हैं।

vi) सामाजिक तथ्य व्यक्तियों से ..... होते हैं। वे उन पर ..... डालने में सक्षम होते हैं।

vii) समाज में सामान्य सामाजिक तथ्य होते हैं। ..... साथ ही समाज में तथ्य भी होते हैं।

10.3.4 बाह्यता एवं बाध्यता

यहाँ सामाजिक तथ्यों की दो विशेषताओं अर्थात् बाह्यता व बाध्यता के आधारों की कुछ विस्तार से विवेचना की जायेगी।

(अ) बाह्यता: सामाजिक तथ्य दो अर्थों में व्यक्ति से बाह्य होते हैं।

i) प्रथम, प्रत्येक व्यक्ति ऐसे अविरल समाज में जन्म लेता है जिसका पहले से ही एक निश्चित संगठन या संरचना होती है। समाज में मूल्य, आदर्श, विश्वास व व्यवहार आदि व्यक्तियों के जन्म से पूर्व ही विद्यमान होते हैं तथा इन्हें व्यक्ति **समाजीकरण** की प्रक्रिया द्वारा सीखते हैं। क्योंकि ये सामाजिक घटनाएं व्यक्ति से पूर्व ही विद्यमान रहती हैं तथा ये वस्तुपरक वास्तविकताएं हैं अत: ये व्यक्ति से बाह्य हैं।

ii) द्वितीय, सामाजिक तथ्य व्यक्ति से इस अर्थ में बाह्य हैं कि कोई एक व्यक्ति समाज का निर्माण करने वाले संबंधों की सम्पूर्णता में केवल एक तत्व मात्र होता है।

ये संबंध किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं बनाये जाते अपितु व्यक्तियों के मध्य होने वाली विभिन्न अन्त:क्रियाओं द्वारा नियत होते हैं। व्यक्तियों तथा उनके द्वारा संगठित समाज के मध्य संबंध को समझने के लिए दर्खाइम ने रासायनिक तत्वों व उनसे निर्मित पदार्थों के मध्य संबंध का समानान्तर उदाहरण लिया है। दर्खाइम (1950: x) के अनुसार जब भी किन्हीं तत्वों के संयोग से कोई नया पदार्थ बनता है तो इस पदार्थ की प्रकृति इसके सम्पूर्ण स्वरूप की प्रकृति होती है तथा इसके निर्माणकारी तत्वों की प्रकृति (गुणों) से भिन्न होती है।

एक जीवित कोशिका में खनिज लवण होते हैं परन्तु हाइड्रोजन, ऑक्सीजन जैसे भागों की अपेक्षा जीवन का गुण अधिक महत्वपूर्ण है। भागों के संचयन मात्र की अपेक्षा सम्पूर्णता अधिक महत्वपूर्ण है। सम्पूर्णता (समाज) की अभिव्यक्ति इसके व्यक्तियों की अभिव्यक्तियों से भिन्न होती है। आपने नित्य-प्रति के जीवन में देखा होगा कि व्यक्तियों व समूह में अंतर होता है (विशेष रूप से उस समय जब समूह द्वारा मांगें उठायी जाती हैं)। व्यक्तिगत रूप से किसी बात पर समूह के सदस्य सहमत हो सकते हैं परन्तु सामूहिक रूप से वे सहमत नहीं होते हैं। विस्तृत समाज में

व्यवहार के कुछ नियम पाए जाते हैं जो उस समाज में विशिष्ट रूप में पाये जाते हैं जिसमें वे निर्मित हुए हैं न कि उसका (समाज का) निर्माण करने वाले भागों अर्थात् उसके सदस्यों में (दर्खाइम 1950)। इस आधार को आगे बढ़ाकर दर्खाइम ने यह दिखाना चाहा है कि सामाजिक तथ्य व्यक्तिगत या मनोवैज्ञानिक तथ्यों से भिन्न होते हैं। अत: इनका अध्ययन मनोविज्ञान से पृथक एक अलग विषय के रूप में करना चाहिये और यह विषय समाजशास्त्र है।

(ब) बाध्यता: द्वितीय आधार, जिसके द्वारा सामाजिक तथ्यों को परिभाषित किया जाता है, वह नैतिक दबाव है जो सामाजिक तथ्य व्यक्ति पर डालते हैं। जब व्यक्ति सामाजिक तथ्यों का प्रतिरोध करने का प्रयास करते हैं तो वे (सामाजिक तथ्य) स्वयं को स्थापित करते हैं। यह आग्रह (दबाव के रूप में) हल्के उपहास से लेकर सामाजिक बहिष्कार तथा नैतिक व क़ानूनी प्रतिबंध तक हो सकता है। यद्यपि अधिकतर परिस्थितियों में व्यक्ति सामाजिक तथ्यों के अनुरूप ही चलते हैं तथा इस कारण से उनके बाध्यकारी प्रभाव को प्रत्यक्ष रूप से महसूस नहीं करते हैं। यह अनुसरण व्यावहारिक प्रतिबंधों के भय के कारण उतना नहीं है जितना कि सामाजिक तथ्यों की वैधता को मानने के कारण है (देखिए, गिडंस 1971: 88)।

दर्खाइम (1950: 4) के अनुसार "सामाजिक" को बाध्यता तथा नियंत्रण के अर्थ में परिभाषित करना "निरंकुश व्यक्तिवाद के उत्साही अंध समर्थकों के अनुचित जोखिम लेने की भांति है। यद्यपि आजकल यह सामान्य रूप से माना जाता है कि हमारे अधिकतर विचार तथा प्रवृत्तियां स्वयं हमारे द्वारा विकसित नहीं होतीं बल्कि बाहर से हम तक आती हैं। अत: वे हमारा भाग कैसे बन सकती हैं। सिवाय इसके कि वे स्वयं को हम पर अधिरोपित करें।" दर्खाइम ने अपने विचारों को उस समय प्रचलित उपयोगितावादी दृष्टिकोण का खण्डन करने के लिए प्रतिपादित किया था। इस दृष्टिकोण के अनुसार समाज को संबद्ध रखा जा सकता है तथा सबसे अधिक सुख उस समय प्राप्त होगा जब प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत हितों की पूर्ति के लिए कार्य करेगा। दर्खाइम ने इस दृष्टिकोण को सहमति नहीं दी। उसके अनुसार व्यक्ति के हित व समाज के हितों में परस्पर मेल नहीं है। सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि समाज अपने सदस्यों पर कुछ नियंत्रण या दबाव बनाये रखे।

सामाजिक तथ्यों के दबावकारी प्रभावों को सुनिश्चित करने के लिए दर्खाइम (1950: 6) ने शिक्षा के प्रयासों को बालक तथा बालिकाओं पर ऐसे कार्य करने, देखने व अनुभव करने के तरीक़ों का अधिरोपण करने के रूप में देखा है जिन्हें कि वे (बालक-बालिकाएं) स्वयं प्राप्त नहीं कर सकते। शिक्षा का उद्देश्य, संक्षेप में, मानव का समाजीकरण है। इस प्रक्रिया में माता-पिता तथा शिक्षक उस सामाजिक परिवेश के प्रतिनिधि व अभिप्रेरक मात्र हैं जो उसकी अपनी छवि के अनुरूप ढालने के लिए विवश हैं।

दर्खाइम (1950: 7) ने आगे कहा है कि सामाजिक तथ्यों को उनकी सार्वभौमिकता मात्र द्वारा परिभाषित नहीं किया जा सकता। कोई विचार या क्रिया इस कारण सामाजिक तथ्य नहीं है क्योंकि वह सभी व्यक्तियों द्वारा दोहरायी गयी है। इस संबंध में समूह के विश्वासों, प्रवृत्तियों, तथा व्यवहारों का संस्थागत या सामूहिक पक्ष अधिक महत्वपूर्ण है जो सामाजिक घटना के लक्षणों को सही प्रकार से वर्णित करता है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि इन घटनाओं का हस्तांतरण समाजीकरण के सामूहिक साधनों के माध्यम से किया जाता है।

अत: सामाजिक तथ्य इसलिए भी मान्य हो सकते हैं कि एक ओर तो वे व्यक्तियों से बाह्य हैं तथा दूसरी ओर वे उन पर दबाव डालने में भी समर्थ होते हैं। वे व्यक्ति से बाह्य हैं, वे सामान्य भी हैं तथा वे सामूहिक भी हैं। अत: उन्हें समाज में रहने वाले व्यक्तियों पर अधिरोपित भी किया जा सकता है।

सामाजिक तथ्यों पर विस्तार में चर्चा के बाद, आइए, पहले सोचिये और करिये 2 को पूरा करें और फिर समाजशास्त्रीय पद्धति पर दर्खाइम के विचारों को समझें।

सोचिए और करिए 2

कुछ ऐसे सामाजिक तथ्यों का उदाहरण दीजिए जो व्यक्ति से बाह्य हों तथा जिनकी बाह्यता व नियंत्रण के अर्थ में परिभाषा दी जा सके? उनके विषय में व्यक्ति कैसे जानता है? इन प्रश्नों पर एक पृष्ठ की टिप्पणी लिखिए तथा इसकी तुलना अपने अध्ययन केन्द्र के अन्य विद्यार्थियों की टिप्पणियों से कीजिए।

10.4 समाजशास्त्रीय पद्धति

समाजशास्त्र की विषय-वस्तु को परिभाषित करने के पश्चात् दर्खाइम ने समाजशास्त्र के अध्ययन की पद्धति का वर्णन किया है। उसकी समाजशास्त्रीय पद्धति दृढ़ रूप से जीवविज्ञान के अनुभव पर टिकी हुई है जिसका उस समय तक जीवित वस्तुओं के विज्ञान के रूप में उदय हो चुका था।

10.4.1 सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियम

दर्खाइम (1950: 14) ने हमें इस संबंध में पहला नियम यह दिया कि सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं की भांति माना जाए। सामाजिक तथ्य वास्तविक हैं परन्तु वस्तुओं की तरह ठोस वास्तविकताओं के रूप में इन पर सीधे ध्यान देने व अध्ययन करने के स्थान पर अन्य लेखकों ने इन्हें कल्पना या भावों की अभिव्यक्ति के रूप में देखा है। एक विषय के रूप में उदय होने तक यह सभी विज्ञानों के लिए सत्य है-विज्ञान से पहले चिन्तन तथा अनुचिंतन होते हैं। विज्ञान से पूर्व की अवस्था को केवल अवधारणात्मक वाद-विवाद द्वारा नहीं तोड़ा जा सकता अपितु **अनुभव-सिद्ध** अध्ययनों द्वारा इस कार्य को किया जा सकता है। सामाजिक विज्ञानों के लिए शायद यह प्राकृतिक विज्ञानों की तुलना में और भी अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इनमें सामाजिक तथ्यों को कुछ इस प्रकार देखने की प्रवृत्ति रही है। जैसे वे वास्तविक तथ्य ही न हों (व्यक्तिगत इच्छा से निर्मित रचनाएं) या इसके विपरीत पहले ही पूर्ण रूप से परिचित शब्द हों जैसे "लोकतंत्र", "समाजवाद" आदि जिन शब्दों का प्रयोग स्वतंत्र रूप से किया जाता है, मानो कि वे एकदम उसी रूप में ज्ञात तथ्यों को व्यक्त करते हैं, जबकि वास्तव में "वे हमारे भीतर भ्रांतिपूर्ण विचारों, अस्पष्ट धारणाओं, पूर्वाग्रहों व भावनाओं के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जागृत करते" (दर्खाइम 1950: 22)। दर्खाइम ने कहा कि इन प्रवृत्तियों का सामना करने के लिए सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं की भांति समझना चाहिये। उनका अध्ययन सहज अंतर्दृष्टियों से नहीं, अनुभव-सिद्ध पद्धति से करना चाहिये। न ही साधारण ऐच्छिक प्रयासों से सामाजिक तथ्यों को बदला जा सकता है।

सामाजिक तथ्यों का वस्तुओं की भांति अध्ययन करते समय वस्तुपरकता बनाये रखने के लिए तीन नियमों का पालन करना चाहिये।

i) सभी पूर्व धारणाओं को दूर किया जाना चाहिये। समाजशास्त्री को साधारण मनुष्यों के मस्तिष्क पर प्रभाव करने वाले साधारण स्तर के विचारों से स्वयं को मुक्त रखना चाहिये तथा उसे अपने अध्ययन के विषय के प्रति भावनात्मक रूप से निष्पक्ष रुख अपनाना चाहिये।

ii) समाजशास्त्री को अवधारणाओं का नियमन एकदम सही ढंग से करना चाहिये। शोध के प्रारंभ में समाजशास्त्री को विवेचित की जा रही घटना के विषय में बहुत कम ज्ञान होता है अत: उसे अपनी विषय-वस्तु को पर्याप्त रूप से बाह्य दिखने वाले गुणों के रूप में सूत्रबद्ध करते हुए आगे बढ़ना चाहिये। अत: श्रम-विभाजन के अध्ययन में किसी समाज में एकता के प्रकार को यह देखकर समझा जा सकता है कि इस समाज में किस प्रकार का क़ानून, दमनकारी या क्षतिपूर्तिकारी, फ़ौजदारी या दीवानी प्रभावशाली है। इसकी चर्चा इकाई 11 एवं 13 में की गयी है।

iii) जब समाजशास्त्री किन्हीं सामाजिक तथ्यों की जांच का उत्तरदायित्व ले तो उसे उन्हें अपनी अभिव्यक्तियों से पृथक करके देखने का प्रयास करना चाहिये। सामाजिक तथ्यों की वस्तुपरकता मुख्यत: उनकी विवेचना करने वाले व्यक्तियों से उन्हें अलग किये जाने पर निर्भर करती है। वे समाज के सदस्यों के लिए एक समाज मानक प्रदान करते हैं। वे कानूनी नियमों, नैतिक नियंत्रकों, कहावतों, सामाजिक सम्मेलनों आदि के रूप में विद्यमान होते हैं। सामाजिक जीवन के बारे में जानने के लिए समाजशास्त्री को इनका अध्ययन करना चाहिये।

सामाजिक तथ्यों को "धारणा के प्रवाहों" में भी देखा जा सकता है। ये धारणाएँ स्थान व काल के अनुरूप बदलती रहती हैं। उदाहरण के लिए कुछ निश्चित समूहों को या तो अधिक विवाह करने हेतु या अधिक आत्महत्याओं के लिए अथवा अधिक या कम जन्म दर के लिए प्रोत्साहित करती हैं। ये प्रवाह स्पष्ट रूप से सामाजिक तथ्य हैं। पहली दृष्टि में ये प्रवाह उन स्वरूपों से अभिन्न दिखायी देते हैं जिनमें ये व्यक्तिगत व्यवहार के रूप में मिलते हैं। परन्तु सांख्यिकी हमें इन्हें पृथक करने का साधन उपलब्ध कराती है। वास्तव में जन्म, विवाह तथा आत्महत्या आदि की दरों में उनका यथार्थता के साथ सामूहिक प्रतिनिधित्व होता है (दर्खाइम 1950: 7)।

सामाजिक प्रवाह सैद्धांतिक परिवृत्य (variables) हैं जबकि सांख्यिकी दरें इन परिवृत्यों से संबंधित प्रस्थापनाओं की पुष्टि के लिए प्राप्त किये जाने वाले साधन हैं। यह मानते हुए कि इन सामाजिक प्रवाहों का प्रेक्षण नहीं किया जा सकता, दर्खाइम ने इस बात पर बल दिया है कि "पद्धति के साधनों" का इस प्रकार से प्रयोग करना चाहिये कि अनुभव सिद्ध पुष्टि की जा सके। यहां यह नोट किया जाना चाहिये कि "आत्महत्या की दरों" का प्रकरण दर्खाइम द्वारा उस तरीके के सर्वोत्तम उदाहरण के रूप में दिया गया जिससे सामाजिक तथ्यों का अध्ययन किया जा सकता है।

10.4.2 सामान्य एवं व्याधिकीय में विभेद के नियम

सामाजिक तथ्यों का अवलोकल करने के नियम बताने के पश्चात् दर्खाइम ने "सामान्य" तथा "व्याधिकीय" सामाजिक तथ्यों में अंतर किया है। दर्खाइम ने इसको इसलिए महत्वपूर्ण माना है क्योंकि, जैसा कि उसने बताया है, मनुष्य का वैज्ञानिक अध्ययन बहुत कुछ इस कारण से पीछे रह गया क्योंकि बहुत से मनीषियों में अपने (समाज) से भिन्न व्यवहार को "व्याधिकीय" स्वरूप में देखने की प्रवृत्ति थी। परन्तु दर्खाइम (1950: 64) ने यह स्पष्ट किया कि एक सामाजिक तथ्य किसी एक सामाजिक प्ररूप के संदर्भ में इसके विकास की दी हुई एक अवस्था में सामान्य है जब यह उस प्रजाति के औसत समाज में इसके उद्विकास की उपयुक्त अवस्था में पाया जाता है। उसने आगे बताया है कि एक सामाजिक तथ्य किसी समाज के लिए केवल उसी दशा में "सामान्य" होता है जब तक वह उस सामाजिक प्ररूप के लिए उपयोगी है।

इसके उदाहरण के रूप में उसने अपराध का उल्लेख किया है। अपराध व्याधिकीय तथ्य माने जाते हैं। परन्तु दर्खाइम का तर्क है कि, यद्यपि अपराध को अनैतिक माना जा सकता है क्योंकि यह प्रचिलित मूल्यों की अवहेलना करता है, वैज्ञानिक दृष्टि से इसे असामान्य कहना उचित नहीं होगा। पहले तो अपराध न केवल एक विशिष्ट प्रकार के समाजों में अधिकतर पाया जाता है अपितु सभी प्रकार के समाजों में पाया जाता है। दूसरा यदि आदर्शों में नियमित विचलन अथवा उनकी अवहेलना नहीं होगी तो मानव व्यवहार में कोई परिवर्तन कहां होगा। साथ ही इस बात की कोई संभावनाएं नहीं रह जाएंगी कि समाज अपने वर्तमान आदर्शों की पुन: पुष्टि कर सके अथवा इस प्रकार के व्यवहार का पुनर्मूल्यांकन करके स्वयं ही आदर्श को परिवर्तित कर सके। यह प्रदर्शित करने के लिए कि अपराध नैतिकता व कानून के सामान्य उद्विकास के लिए उपयोगी है, दर्खाइम ने सुकरात का उदाहरण प्रस्तुत किया है। जो अपने विचारों की स्वतंत्रता के कारण

एथेनियन कानून की दृष्टि में अपराधी था। परन्तु इस अपराध से उसने अपने समाज की महान सेवा की। क्योंकि इससे एक नयी नैतिकता व विश्वास का संचार हुआ जिसकी उस समय एथेन्सवासियों को आवश्यकता थी। इससे इस अर्थ में मानवता की भी सेवा हुई क्योंकि आज अनेक समाजों में लोगों द्वारा उपभोग की जा रही विचारों की स्वतंत्रता उस जैसे व्यक्तियों के प्रयासों से ही संभव हो सकी।

दर्खाइम उन तरीकों से प्रभावित था जिनके प्रयोग से चिकित्सा का अध्ययन वैज्ञानिक हो गया था। चिकित्सक शरीर की सामान्य कार्य-विधि तथा इसके व्याधिकीय लक्षणों दोनों का ही अध्ययन करते हैं। इन दोनों लक्षणों का अध्ययन शरीर की प्रकृति को पहचानने में सहायक होता है। उसने इस पद्धति को सामाजिक तथ्यों के अध्ययन में प्रयोग किया। समाज में श्रम विभाजन के अपने अध्ययन में उसे प्रथम दो भागों में सामान्य लक्षणों की व्याख्या तथा तीसरे भाग में असामान्य लक्षणों की व्याख्या की है। उसने अपराध तथा दण्ड दोनों को कुछ सीमा तक सामान्य ही माना है।

एक सामाजिक तथ्य किस प्रकार से समान रूप से विद्यमान होता है? अधिकतर अपराध की दर एक समाज में लगभग स्थिर रहती है। लेकिन जब यह दर अप्रत्याशित रूप से बढ़ती है तो इसे असामान्य या व्याधिकीय सामाजिक तथ्य कहते हैं। इसी प्रकार, इस आधार का प्रयोग करते हुए आत्महत्या एक सामान्य तथ्य है (यद्यपि इसको "ग़लत" या "अनैतिक" माना जाता है क्योंकि यह उन मूल्यों तथा **प्रतिमानों** के विरुद्ध है जो जीवन के संरक्षण को श्रेष्ठ बनाते हैं)। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप में आत्महत्या की दर में अप्रत्याशित वृद्धि उन कारणों में से एक थी जिनके कारण दर्खाइम ने इस घटना का अध्ययन करने का निर्णय लिया।

10.4.3 सामाजिक प्ररूप के वर्गीकरण के नियम

विद्वानों में सामूहिक जीवन की विभिन्न अवधारणाएं रही हैं। कुछ इतिहासविदों का मत है कि प्रत्येक समाज विशिष्ट है तथा इस कारण हमारे द्वारा समाजों की तुलना नहीं की जा सकती। दूसरी ओर दार्शनिक यह मानते हैं कि सभी समाजों की एक ही प्रजाति, मानव प्रजाति, है तथा मानव प्रकृति के समान लक्षणों के कारण ही सभी सामाजिक उद्‌विकास प्रस्फुटित हुए हैं।

इस संबंध में दर्खाइम की स्थिति मध्य में है। उसने सामाजिक प्रजातियों या सामाजिक प्ररूपों का उल्लेख किया है। यद्यपि सामाजिक तथ्यों में बहुत अधिक भिन्नता है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उन्हें वैज्ञानिक तरीके से वर्णित नहीं किया जा सकता अर्थात् उनकी तुलना, वर्गीकरण व व्याख्या ही नहीं की जा सकती हो। यदि दूसरी ओर सिर्फ़ एक प्रजाति की बात की जाती है तो महत्वपूर्ण गुणात्मक भिन्नताएं हमारे द्वारा छोड़ दी जायेंगी और उन्हें एक साथ समझना असंभव होगा।

समाजों का उनके प्ररूपों में वर्गीकरण करना उनकी व्याख्या करने की दिशा में उठाया गया एक महत्वपूर्ण क़दम है क्योंकि प्रत्येक (सामाजिक) प्ररूप की समस्याएं व व्याख्याएं भिन्न होंगी। यह निर्णय लेने की भी आवश्यकता है कि एक सामाजिक तथ्य समान है अथवा असमान, क्योंकि एक सामाजिक तथ्य किसी सामाजिक प्ररूप विशेष के संदर्भ में ही समान या असमान होता है। दर्खाइम ने सामाजिक प्ररूपों के वर्गीकरण के लिए "सामाजिक आकारिकी" (social morphology) शब्द का प्रयोग किया है। प्रश्न यह है कि सामाजिक प्ररूप किस तरह से बनते हैं? यहां "प्ररूप" शब्द का अर्थ एक समूह में विभिन्न इकाइयों की समान विशेषताओं से है। उदाहरण के लिए, "कुंवारे" तथा "विवाहित व्यक्ति" दो प्रकारों के अंतर्गत आते हैं तथा दर्खाइम ने अपने समाजशास्त्रीय शोध से सफलतापूर्वक यह प्रदर्शित किया कि "कुंवारों" में आत्महत्या की दर अधिक थी। कृपया इसे व्यक्तिगत घटनाओं से भ्रमित न करें।

हमें पहले प्रत्येक विशिष्ट समाज का पूर्णरूपेण अध्ययन करना चाहिये और तभी इनकी समानताएं व विभिन्नताएं देखने के लिए तुलना करनी चाहिये। तद्नुसार, हमारे द्वारा उनका वर्गीकरण किया जा सकता है। दर्खाइम (1950: 78) का कहना था कि क्या विज्ञान का यह नियम नहीं है कि विशिष्ट का अवलोकन करने के पश्चात् ही समानता पर पहुंचना चाहिये और वह भी उसको समग्रता में देखने के पश्चात्? यह जानने के क्रम में, कि क्या एक तथ्य सम्पूर्ण प्रजाति या सामाजिक प्ररूप के लिए समान है अथवा नहीं, यह आवश्यक नहीं कि हम इस प्रकार के सभी समाजों का अवलोकन करें, केवल कुछ का अवलोकन ही पर्याप्त होगा। दर्खाइम (1950: 80) के अनुसार अनेकों प्रकरणों में एक सही प्रकार से किया गया अवलोकन भी पर्याप्त होगा, जैसा कि क़ानून की स्थापना के लिए सही प्रकार से निर्मित प्रयोग (अध्ययन) पर्याप्त होता है (तुलनात्मक पद्धति पर इकाई 11 देखें)। दर्खाइम "एक खण्डीय समाज" अथवा "पूर्णत: सरल समाज", जैसे **होर्ड (Horde)** को आधार के रूप में लेकर समाजों का वर्गीकरण उनके संगठन के स्तर के अनुसार करना चाहता था। होर्डस् के संयोग से निर्मित होने वाले समाज को "सरल **बहुखण्डीय"** (simple polysegmental) कहा जा सकता है। इनके संयोग से "सरलीकृत संयुक्तांगी बहुखण्डीय समाजों" (polysegmental societies simply compounded) का निर्माण होता है। इस प्रकार के समाजों के संयोग से और अधिक जटिल समाज उत्पन्न होते हें जिन्हें "युग्मित संयुक्तांगी बहुखण्डीय समाज" (poly segmental societies doubly compounded) कहा जाता है तथा इसी प्रकार आगे अन्य समाजों का निर्माण हो सकता है।

इन प्ररूपों के अंतर्गत विभिन्न उपभेद भी किये जा सकते हैं जिसका आधार यह होगा कि इन प्रारंभिक खण्डों का विलयन पूर्ण रूप से हुआ अथवा नहीं।

समाजों की सामाजिक प्रजातियाँ अथवा प्ररूपों का वर्गीकरण करने के लिए दर्खाइम द्वारा प्रयुक्त कार्य-प्रणाली के संबंध में जॉन रेक्स (1961) ने जाँच की है कि यह जीव-विज्ञानीय उपागम किस सीमा तक समाजशास्त्रीय शोध में उपयोगी है। रेक्स ने ऐसे प्रकरणों को खोज निकाला जहां यह उपयोगी हो सकता है तथा वे प्रकरण जहां इसका प्रयोग कठिन है। पहले प्रकार के प्रकरणों में वर्णन, वर्गीकरण तथा औसत (सामाजिक) प्ररूपों के निर्माण संबंधी प्रयोग आते हैं। कठिनाई उस समय होती है जब समाजों का इतिहास अध्ययन की विषय-वस्तु बन जाता है, इस प्रकार के प्रकरणों में प्रजातियों की खोज लेखक द्वारा ऐतिहासिक प्रक्रिया से बाहर जाकर कर ली जाती है तथा उद्विकास का सिद्धांत (समाजशास्त्र के लिए) अधिक उपयोगी नहीं है (देखिए रेक्स 1961: 14)।

आइए, अब सामाजिक तथ्यों के अवलोकन और सामाजिक प्ररूपों के वर्गीकरण पर चर्चा के बाद उपभाग 10.4.4 में सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के नियमों को समझें।

10.4.4 सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के नियम

सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के लिए दो प्रकार के उपागमों का प्रयोग किया जा सकता है। ये हैं कारणात्मक तथा प्रकार्यात्मक। पहले का संबंध यह व्याख्या करने से है कि अध्ययन की जाने वाली घटना "क्यों" घटित होती है। दूसरे का संबंध यह स्थापित करने से है कि अध्ययन किये जा रहे तथ्य की सामाजिक प्राणी की सामान्य आवश्यकताओं के लिए क्या उपयोगिता है (दर्खाइम 1950: 95)।

किसी सामाजिक तथ्य को जन्म देने वाले कारणों की पहचान अलग से की जानी चाहिये। चाहे उसका सामाजिक प्रकार्य कुछ भी हो। सामान्य रूप से, प्रकार्यों का निर्धारण करने से पूर्व कारणों को जानने का प्रयत्न करना चाहिये। यह इसलिए क्योंकि ऐसे कारणों की जानकारी, जो किसी घटना के घटित होने के लिए उत्तरदायी हैं, किन्हीं विशेष परिस्थितियों में उसके सम्भावित प्रकार्यों के बारे में हमें कुछ अन्तर्दृष्टियां प्रदान कर सकती है। यद्यपि "कारण" तथा "प्रकार्य"

दो अलग-अलग विशेषताएं हैं परन्तु दोनों के मध्य एक अनुपूरक संबंध होने से रोका नहीं जा सकता तथा इन्हें किसी भी ओर से देखा जा सकता है। वास्तव में, दर्खाइम श्रम-विभाजन के अपने अध्ययन के प्रथम भाग में प्रकार्यों से प्रारंभ करके तथा इसके द्वितीय भाग में कारणों पर आने में एक अर्थ देखता है। इस अध्ययन से "दण्ड" के उदाहरण को हमारे द्वारा लिया जा सकता है: अपराध समाज की सामूहिक भावनाओं पर आघात करता है। जबकि दण्ड का प्रकार्य इन भावनाओं को प्रखरता के उस स्तर तक बनाये रखना होता है। यदि भावनाओं के विरुद्ध किये जाने वाले अपराध को दण्डित नहीं किया जाए तो सामजिक स्थिरता को बनाये रखने के लिए आवश्यक भावनाओं की दृढ़ता को पहले की तरह नहीं रखा जा सकता। (यहां यह बताया जा सकता है कि समाजशास्त्र में विशेष रूप से अमेरिका में 1940 व 1950 के दशकों में "प्रकार्यवाद" के प्रभावशाली रहने का कारण दर्खाइम की "प्रकार्य" की अवधारणा रही है। इसकी चर्चा हमने इन पाठ्यक्रम के अन्तिम दो खण्डों (6 तथा 7) में की है।)

सामाजिक तथ्यों की व्याख्या में प्रयोग किये जाने वाले दो उपागमों में अंतर करने के पश्चात् दर्खाइम का अगला कार्य उस पद्धति का निर्धारण करना था जिसके द्वारा सामाजिक तथ्यों को विकसित किया जा सके। सामाजिक तथ्यों की प्रकृति ही इन तथ्यों की व्याख्या करने वाली पद्धति को निर्धारित करती है। क्योंकि समाजशास्त्र की विषय-वस्तु सामूहिक प्रकृति का सामाजिक गुण है अत: इसकी व्याख्या का स्वरूप भी सामाजिक होना चाहिये। दर्खाइम ने व्यक्ति और समाज के बीच एक स्पष्ट रेखा खींची है। (समाज एक अलग यथार्थ है व इसको निर्मित करने वाले व्यक्तियों से भिन्नता रखता है तथा इसकी अपनी अलग विशेषताएं होती हैं।) साथ ही उसने समाजशास्त्र व मनोविज्ञान के बीच स्पष्ट भेद किया है। सामाजिक तथ्यों की व्याख्या सीधे व्यक्तिगत विशेषताओं के रूप में अथवा मनोविज्ञान के शब्दों में करने का कोई भी प्रयास व्याख्या को ग़लत कर देगा। इसलिए कारणात्मक व्याख्या के प्रकरण में "सामाजिक तथ्य की व्याख्या करने वाले कारण की खोज इससे पूर्व घटित सामाजिक तथ्यों में करनी चाहिये न कि व्यक्तिगत चेतना की स्थितियों में"। प्रकार्यात्मक व्याख्या के प्रकरण में "सामाजिक तथ्य का प्रकार्य सदैव किसी सामाजिक उद्देश्य के संबंध में खोजा जाना चाहिये" (दर्खाइम 1950: 110)।

दर्खाइम ने व्याख्या संबंधी तर्क के अंत में सामाजिक विज्ञान की तुलनात्मक प्रवृत्ति पर बल दिया है। यह दिखाने के लिए कि एक तथ्य दूसरे तथ्य का कारण है "हमें उन प्रकरणों की तुलना करनी होगी जिनमें वे समान रूप से उपस्थित या अनुपस्थित रहते हैं। ऐसा यह देखने के लिए करना होगा कि परिस्थितियों के विभिन्न संयोजनों में उनके द्वारा प्रदर्शित भिन्नता यह संकेत करती है कि एक तथ्य दूसरे पर निर्भर करता है" (दर्खाइम 1950: 125)।

समाजशास्त्री सामान्य रूप से प्रयोगशाला में नियंत्रित प्रयोग नहीं करते अपितु वे रिपोर्ट किये जा चुके तथ्यों का अध्ययन करते हैं या अध्ययन क्षेत्र में जाकर इन सामाजिक तथ्यों का अवलोकन करते हें जो समाज में स्वत: उत्पन्न हो चुके होते हैं। अत: वे अप्रत्यक्ष प्रयोग अथवा तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग करते हैं। दर्खाइम ने फ्रेंच भाषा में ऑगस्ट कॉम्ट तथा अंग्रेज़ी भाषा में जे. एस.मिल्स की पुस्तक, *सिस्टम ऑफ़ लॉजिक* का अनुसरण करते समय तुलनात्मक पद्धति की कार्य-प्रणाली के रूप में "सहगामी भिन्नताओं की पद्धति" (method of concomitant variations) का उदाहरण प्रशंसापूर्वक देते हुए इसे 'समाजशास्त्रीय शोध का श्रेष्ठ उपकरण' बताया है। इस पद्धति के विश्वसनीय होने के लिए उन सभी परिवृत्यों को दृढ़ता से अलग करना आवश्यक नहीं जिन्हें हमने अपने द्वारा तुलना किये जा रहे परिवृत्यों से भिन्न माना है। पर्याप्त संख्या व विभिन्न प्रकरणों में पायी जाने वाली किन्हीं दो घटनाओं का केवल समानांतर स्थितियों में पाया जाना इस बात का सबूत है कि उनके मध्य एक संभावित संबंध विद्यमान है। इसकी वैधता इस तथ्य के कारण है कि सहगामी भिन्नताएं कारणात्मक संबंधों को संयोगवश नहीं अपितु स्वाभाविक रूप से प्रदर्शित करती है कि सहगामी भिन्नताएं कारणात्मक संबंधों को संयोगवश नहीं अपितु

स्वाभाविक रूप से प्रदर्शित करती हैं। यह उन्हें इस प्रकार दिखाता है जैसे वे एक निरंतर शैली में एक दूसरे को प्रभावित कर रही हैं, कम से कम जहां तक उनके गुण का संबंध है। दर्खाइम के अनुसार स्थिर सहगामिता स्वयं में एक नियम है चाहे तुलना से पृथक की गयी घटना की दशा कुछ भी रही हो। जब दो घटनाएं सीधे ही एक दूसरे के साथ परिवर्तित होती हैं तो इस संबंध को कुछ प्रकरणों में उस समय भी स्वीकार करना चाहिये जब उन घटनाओं में से एक दूसरी घटना के बिना भी उपस्थित हो। ऐसा या तो इस कारण से हो सकता है कि कुछ विपरीत कारणों की क्रिया द्वारा इस घटना के कारण को अपना प्रभाव उत्पन्न करने से रोक दिया गया है या इसलिए कि यह उपस्थित तो है परन्तु यह दिखायी देने वाले स्वरूप से भिन्न अवस्था में है। उदाहरण के लिए जब पौधे को सूर्य की रोशनी सीधे मिलती है तब वह सीधा उगता है। परन्तु जब इसी पौधे को बंद कमरे में रख कर एक आढ़ी दिशा से रोशनी दी जाए तो यह उसी रोशनी की दिशा में झुक जाता है। अत: यह दर्शाता है कि पौधे के बढ़ने का सूर्य की रोशनी से सीधा संबंध है। जब एक परिवृत्य बदलता है तो दूसरा उसके अनुरूप बदल जाता है। यद्यपि हमें इसकी पुन: परीक्षण करने की आवश्यकता है लेकिन हमें विधिवत् किये गये अध्ययनों के परिणामों को जल्दबाज़ी में नहीं छोड़ देना चाहिये।

सहगामी भिन्नता को कई स्तरों पर देखा जा सकता है: एक समाज में, समान प्रजाति अथवा समान प्ररूप के समाजों में, या कई भिन्न प्रकार की सामाजिक प्रजातियों के समाजों में। यद्यपि किसी दी हुई सामाजिक प्रजाति से संबंधित सामाजिक संस्था की सम्पूर्ण व्याख्या के लिए न केवल इन समाजों में विभिन्न स्वरूपों की अपितु इसकी पूर्वगत प्रजातियों में भी इसके विभिन्न स्वरूपों की तुलना करनी होगी। अत: परिवार, विवाह, सम्पत्ति आदि की वर्तमान अवस्था की व्याख्या करने के लिए उनकी उत्पत्ति के बारे में व उन तत्वों के बारे में जानना आवश्यक होगा जिनसे ये संस्थाएं बनी है। इसके लिए हमें इस संस्था को प्रारंभिक प्रकार के समाजों में पारिवारिक संगठन, विवाह या सम्पत्ति के सबसे अधिक मूल स्वरूप से लेकर विभिन्न सामाजिक प्रजातियों में उसके क्रमिक विकास का अध्ययन करना होगा। "किसी भी जटिल सामाजिक तथ्य की व्याख्या उस समय तक नहीं की जा सकंती जब तक कि सभी प्रजातियों में हो चुके इसके सम्पूर्ण विकास को न देखा जाए" (दर्खाइम 1950: 139)। ऐसे अध्ययन से हमें यह पता चलेगा कि किसी भी व्यवस्था के मूल तत्व क्या हैं तथा वे कैसे विकसित हुए हैं। इसके साथ यह भी निश्चित किया जा सकता है कि उन व्यवस्थाओं का स्वरूप किन-किन परिस्थितियों पर निर्भर होता है।

दर्खाइम के लिए तुलनात्मक पद्धति समाज के विज्ञान का वास्तविक ढांचा है। दर्खाइम (1950: 139) के अनुसार "तुलनात्मक समाजशास्त्र को एक शाखा के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए, यह स्वयं समाजशास्त्र है, जब तक कि यह स्वयं को विशुद्ध रूप से वर्णनकारी होने से बचाये रखता है तथा तथ्यों का विवरण देने का आकांक्षी है"। इस पद्धति के स्पष्टीकरण के लिए तुलनात्मक पद्धति पर इकाई 11 देखिए।

बोध प्रश्न 2

i) सामाजिक तथ्यों का वस्तुपरकता से अवलोकन करने के क्या नियम हैं? आठ पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ii) सामाजिक तथ्यों की व्याख्या करने के दो पक्ष क्या हैं? अपना उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10.5 सारांश

दर्खाइम की समाजशास्त्र की अवधारणा की चर्चा को संक्षेप में प्रस्तुत करते हुए यह कहा जा सकता है कि दर्खाइम ने समाजशास्त्र को स्पष्ट रूप से एक वैज्ञानिक विषय के रूप में माना है, जिसकी विषय-वस्तु अलग है। उसने विशेषकर मनोविज्ञान, से इसे पृथक किया है। उसने सामाजिक तथ्यों की पहचान करने, अवलोकन व व्याख्या करने के नियम स्थापित किये। उसने सामाजिक तथ्यों की व्याख्या दूसरे सामाजिक तथ्यों द्वारा किये जाने पर बल दिया। उसके लिए व्याख्या का अर्थ प्रकार्यों व कारणों का अध्ययन करना था तथा उसने इन कारणों को तुलनात्मक पद्धति द्वारा प्राप्त किया है। उसने विभिन्न प्रकार की एकरूपताओं में श्रम-विभाजन के अध्ययन, विभिन्न प्रकार के समाजों में आत्महत्या की दर के अध्ययन, एक सामाजिक प्ररूप में धर्म के अध्ययन द्वारा इस प्रकार के अध्ययनों की प्रकृति दिखाने का प्रयास किया। समाजशास्त्र को एक विषय के रूप में वैध आधार प्रदान करने के प्रयासों के रूप में उसके जीवन व कार्यों को देखा जाता है। यद्यपि प्राकृतिक विज्ञानों, विशेषकर जीवविज्ञान, में ऐसा अध्ययन वैध अनुभव सिद्ध पद्धति से किया जाता है जिसमें अवलोकन, वर्गीकरण तथा व्याख्या द्वारा "नियमों" की प्राप्ति की जाती है, समाजशास्त्र में यह कार्य तुलनात्मक पद्धति से किया जाता है।

10.6 शब्दावली

सामूहिक — परस्पर अन्त:क्रिया कर रहे व्यक्तियों द्वारा निर्मित एक संयुक्त क्रिया, विचार या आदर्श।

अनुभव सिद्ध — वस्तुपरक तरीके से आंकड़ों को इकट्ठा करने के लिए अवलोकन तथा अन्य परीक्षित पद्धतियों का प्रयोग।

होर्ड (Horde) — ऐसे लोगों का समूह जो परस्पर नातेदारी संबंध से जुड़े हों। ये प्राय: खानाबदोश शिकारियों व खाद्य संचयी समहों में पाये जाते हैं।

प्रतिमान — यह क्रिया का विशिष्ट मार्गदर्शक है जो यह परिभाषित करता है कि विशिष्ट परिस्थितियों में क्या उचित व स्वीकृत व्यवहार है।

बहुखण्डीय एक से अधिक खण्ड से निर्मित।

प्रतिबंध आदर्श को लागू करने के लिए पुरस्कार व दण्ड। पहले को सकारात्मक व दूसरे को नकारात्मक प्रतिबंध करते है।

समाजीकरण वह प्रक्रिया जिसके द्वारा व्यक्ति समाज की संस्कृति सीखते हैं।

सामाजिक विज्ञान एक ऐसी पद्धति जिसका प्रयोग उन मानव संबंधों व संगठनों के स्वरूपों का वैज्ञानिक अध्ययन करने में किया जाता है जो समाज में व्यक्तियों को एक साथ रखने के लिए उत्तरदायी हैं।

सूइ जेनेरिस (sui generis) वह जो स्वयं से उत्पन्न हो, वह जिसका अस्तित्व स्वयं में हो, वह जो अपने उद्भव तथा अस्तित्व के लिए अन्य वस्तुओं पर निर्भर न हो, दर्खाइम ने समाज को सुई जेनॅरिस् माना है। यह सदैव उपस्थित रहता है तथाा इसके उद्भव का कोई बिन्दु नहीं है। (यह शब्द यूरोप की शास्त्रीय भाषा का है।)

10.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

आरों, रेमों, 1967. मेन करेंट्स इन सोशियोलॉजिकल थॉट. वॉल्यूम 2, पेगुइन बुक्स: लंदन

दर्खाइम, एमिल, 1950, द रूल्स् ऑफ सोशियोलॉजिकल मेथड् (ट्रांसलेटिड बाय् एस.ए. सोलोवे एण्ड जे.एच. म्यूलर, एण्ड एडिटिड बाय् इ.जी. कैटलिन, द फ्री प्रेस ऑफ ग्लेनको: न्यूयार्क

पिकरिंग, डब्ल्यू. एस.एफ (सम्पादित) 2002 *दर्खाइम टुडे*. दर्खाइम प्रेस: ऑक्सफ़र्ड

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) नहीं, साहचर्य

ii) सूइ जेनॅरिस्

iii) सामाजिक तथ्य

iv) वस्तुओं

v) स्वतंत्र

vi) बाह्य, दबाव

vii) व्याधिकीय

बोध प्रश्न 2

i) दर्खाइम ने सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं की भांति वस्तुपरक रूप से अध्ययन करने के तीन नियम बनाये:

   (क) सभी पूर्व-धारणाओं का उन्मूलन किया जाना चाहिये।

   (ख) प्रत्येक समाजशास्त्रीय अध्ययन की विषय-वस्तु में ऐसी घटनाओं के समूह को सम्मिलित करना चाहिये जिन्हें प्रारंभ में ही कुछ निश्चित बाह्य विशेषताओं द्वारा परिभाषित किया जा चुका हो तथा इस प्रकार परिभाषित सभी घटनाओं को इस समूह में शामिल करना चाहिये।

(ग) जब समाजशास्त्री किसी प्रकार के सामाजिक तथ्यों की खोज का उत्तरदायित्व लेता है तो उसे उन्हें अपनी व्यक्तिगत अभिव्यक्तियों से स्वतंत्र होकर देखना चाहिये।

ii) सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के लिए दो उपागमों अर्थात् कारणात्मक तथा प्रकार्यात्मक का प्रयोग किया गया है। कारणात्मक उपागम का संबंध यह व्याख्या करने से है कि सामाजिक तथ्य "क्यों" विद्यमान रहते हैं। प्रकार्यात्मक उपागम सामाजिक तथ्य की यह प्रदर्शित करते हुए व्याख्या करता है कि यह समाज (सामाजिक सावयव) की किस आवश्यकता की पूर्ति करता है। किसी सामाजिक तथ्य की पूर्ण व्याख्या करने के लिए दोनों की आवश्यकता पड़ती है। तार्किक रूप से प्रकार्यात्मक व्याख्या से पहले कारणात्मक व्याख्या करनी चाहिये, क्योंकि कुछ विशेष परिस्थितियों में कारण की जानकारी हमें उसके सम्भावित प्रकार्यों के बारे में कुछ पूर्वाभास दे देती है। यद्यपि दोनों अलग-अलग हैं परन्तु दोनों के मध्य एक अनुपूरक संबंध है। उदाहरण के लिए, दण्ड (जो सामाजिक प्रतिक्रिया है) का अस्तित्व उन सामूहिक भावनओं की प्रखरता के कारण होता है जिन्हें अपराध आघात पहुंचाता है। दण्ड का प्रकार्य इन भावनाओं को उसी प्रखर स्तर तक बनाये रखना है। यदि इनके विरुद्ध किये गये अपराध को दण्डित नहीं किया गया तो सामाजिक स्थिरता के लिए आवश्यक भावनाओं की दृढ़ता को पूर्ववत् नहीं रखा जा सकेगा।